प्रकाशन क्रमांक : 2014/03

पशु चारे में उपयोगी प्रमुख वृक्ष

डॉ. राजेश कुमार धूड़िया
प्रोफेसर एवं प्रमुख अन्वेषक

शंकर लाल यादव
टीचिंग एसोसिएट

।। पशुधनं नित्यं सर्वलोकोपकारकम् ।।

पशुधन चारा संसाधन प्रबन्धन एवं तकनीक केन्द्र
राजस्थान पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
बीकानेर–334 001 (राजस्थान)

खेजड़ी

प्रचलित नाम : **जांटी/लूंग पेड़/थार का कल्पतरु**

वानस्पतिक नाम : **प्रोसोपिस सिनेरेरिया (*Prosopis cineraria*)**

खेजड़ी उष्ण मरू क्षेत्रों का एक मुख्य पेड़ है जिसे थार का कल्पवृक्ष /कल्पतरू भी कहते हैं। खेजड़ी वृक्ष बहुआयामी खासियत लिए हुए है। इस पेड़ से चारा, भोजन, सब्जी, लकड़ी का सामान, ईंधन व दवा मिलती है। यह पेड़ ऊष्ण मरूक्षेत्र में जहाँ गर्मियों में अधिकतम तापमान 45^{0}–48^{0} से. व सर्दियों में न्यूनतम तापमान 4^{0}–10^{0} से. तथा बरसात 100–450 मिमी. होती है, आसानी से पनपता है। इस पेड़ की उत्पत्ति दक्षिणी व पश्चिमी एशिया, अफगानिस्तान, ईरान व भारत के शुष्क प्रदेशों से मानी जाती है। इसके अलावा यह पेड़ ओमान, पाकिस्तान, सउदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात व मेमन में पाया जाता है। भारत में मुख्यतः यह पेड़ राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, गुजरात, मध्यप्रदेश व कर्नाटक के शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। पश्चिमी राजस्थान के ग्रामीण इलाकों में यह पेड़ जीविकोपार्जन का मुख्य साधन है। इस पेड़ से चारा, ईंधन व सब्जी के अतिरिक्त कृषि वानिकी पद्धति से फसलें उगाने पर चारे व दानें की उपज में भी बढ़ोतरी होती है। यह धीमी गति से बढ़ने वाला वृक्ष है तथा पूर्ण बढ़ोतरी में लगभग 15 से 20 वर्ष का समय लेता है। खेजड़ी की औसत ऊँचाई 12 से 19 मीटर तथा तने का व्यास 75 सेमी. तक होता है। खेजड़ी के पेड़ की जड़ मूसलाकार होती है जो मृदा में 30 से 40 मीटर गहराई तक चली जाती है। खेजड़ी की टहनियों पर छोटे छोटे कांटे पाये जाते हैं। खेजड़ी पर मार्च व अप्रैल माह में हल्के हरे व पीले रंग के पुष्प आते है। जिनसे मई जून माह में फलियाँ बनती है। इन फलियों की लम्बाई 3–8 ईंच होती है जो सब्जी बनाने व सूखी फलियाँ खाने के रूप में काम में ली जाती हैं। खेजड़ी वृक्ष की आयु 400 से 500 वर्ष तक की होती है। इसके बहुत पुराने वृक्ष भी कई स्थानों पर पहचान के रूप में मिलते हैं। खेजड़ी में पुनरूद्भवन की क्षमता होती है। शुष्क क्षेत्रों का महत्त्वपूर्ण पेड़ राजस्थान का राज्य वृक्ष भी है।

उपयोगिता

खेजड़ी के सूखे पतों को लूंग/लूम कहते हैं तथा सूखी फलियों को सांगरी कहते हैं जिनको सभी पशु चाव से खाते हैं। शुष्क क्षेत्रो में खेजड़ी भेड़, बकरी व ऊँट का मुख्य चारा है। एक खेजड़ी वृक्ष से 25 से 30 किलोग्राम सूखा चारा आसानी से प्राप्त होता है। सूखे चारे की उपज मुख्यतः भूमिगत पानी की उपलब्धता व औसत वार्षिक वर्षा पर निर्भर करती है। चारागाहों व खेतों में खेजड़ी के पेड़ों की साल मे दो बार छंगाई की जाती है जिससे भेड़ व बकरियों के लिये हरा चारा प्राप्त होता है तथा ग्रामीणों को ईंधन के लिये लकड़ियाँ प्राप्त होती हैं। खेजड़ी बकरी, भेड़ व ऊँट के जीवन निर्वाह के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण वृक्ष है। इसकी टहनियों पर छोटे–छोटे कांटे पाये जाने के बावजूद बकरियाँ व भेड़ इसकी छोटी–छोटी पत्तियों को बड़ी सुगमता से खा लेती है। खेजड़ी की पत्तियां दूधारू पशुओं को खिलानें के लिये भी काम में ली जाती है। खेजड़ी की पत्तियाँ स्वादिष्ट व पौष्टिक होती है जिन्हें सभी पशु चाव से खाते हैं। प्रायः देखा गया है कि अन्य वृक्षों की तुलना में सभी पशु खेजड़ी को प्राथमिकता देते हैं। सूखे चारे के अतिरिक्त खेजड़ी का और भी बहुत उपयोग है। बहुआयामी उपयोगिता के कारण खेजड़ी को कल्पवृक्ष भी कहते है। खेजड़ी की छाल में औषधीय गुण भी पाये जाते है। खेजड़ी से फरवरी मार्च के महीने में गोंद भी प्राप्त होता है। शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में हरी व कच्ची सांगरी का सब्जी व आचार बनाने में बहुत उपयोग होता है। खेजड़ी की सांगरी स्वादिष्ट व पौष्टिक होती है। जिनमें 9–12 प्रतिशत प्रोटीन तथा 8–12 प्रतिशत शर्करा पायी जाती है। खेजड़ी वृक्ष मृदा की उत्पादकता बढ़ाने में भी बहुत ही उपयोगी है। इसकी पत्तियां लगातार मृदा में मिलती रहती है जिससे मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ती है तथा खेजड़ी की सघन व गहरी जड़ें मृदा को जकड़े रहती है अतः मृदा अपरदन को रोकने में भी बहुत ही लाभकारी है। बरसात के मौसम (जुलाई–अगस्त माह) में खेजड़ी का बीजारोपण करना चाहिए, एक बार स्थापित होने के पश्चात खेजड़ी की ज्यादा देखभाल करने की आवश्यकता नहीं रहती है। खेजड़ी में सूखारोधी गुणों के अलावा सर्दियों में पड़ने वाले

पाले तथा गर्मियों में उच्च तापमान को आसानी से सहन करने की क्षमता होती है। खेजड़ी पेड़ मरू क्षेत्रों में पायी जाने वाली बालू रेत के टीले तथा तनिक क्षारीय भूमि में भी पनप जाता है तथा यह लेग्युमिनेसी कुल का पौधा होने के कारण मृदा में नाइट्रोजन स्थिरीकरण कर मृदा की उर्वरता को बढ़ाता है। इन सभी गुणों के कारण यह रेगिस्तान का कल्पतरू कहलाता है।

रासायनिक संघटन (प्रतिशत)

शुष्क पदार्थ	कच्ची प्रोटीन	कच्चा रेशा	ईथर निष्कर्ष	भस्म
35—38	11—13	19—20	3—4	16—20

विलायती बबूल

प्रचलित नाम : **कीकर**

वानस्पतिक नाम : **प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा (*Prosopis juliflora*)**

वर्ष भर हरा रहने वाला यह पेड़ शुष्क व पहाड़ी क्षेत्रों में बहुतायत से पाया जाता है। इसकी कांटेदार टहनियों पर छोटी–छोटी पत्तियाँ लगी होती है। इस पेड़ की ऊँचाई 8–10 मीटर तक होती है। यह एक मरूद्भिद पादप है जो पेरू की उत्पत्ति का माना जाता है तथा लगभग सम्पूर्ण विश्व में पाया जाता है। इसकी जड़ें भूमि में गहराई में जाती है जिसके कारण यह शुष्क रेगिस्तान में भी आसानी से उग जाता है। इसका प्रसार मुख्यत: बीज के द्वारा होता है। तथा 50–1200 मिमी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में आसानी से उगाया जा सकता है।

उपयोगिता

विलायती बबूल कि पत्तियों में टैनिक अम्ल की मात्रा अधिक होने के कारण स्वाद में हल्की कड़वी होती है अत: आमतौर पर पशु ज्यादा खाना पसंद नहीं करते हैं। परन्तु सूखे व चारे की कमी की स्थिति में ऊँट व बकरियाँ थोड़ा बहुत खा लेते है। मई–जून माह में इस पेड़ पर फलियाँ लगती है जो सूखने पर मीठी हो जाती है तथा इनको बकरियाँ व ऊँट बड़े चाव से खाते हैं। साल मे दो बार इसकी छंगाई कर पत्तियाँ व लकड़ियां इकठ्ठी की जाती है। विलायती बबूल हवा द्वारा होने वाले मृदा अपरदन को रोकने तथा रेगिस्तान के विस्तार को रोकने में बहुत ही उपयोगी वृक्ष है। रेगिस्तानी क्षेत्रों में विलायती बबूल के बीज वर्षा ऋतु में छिटककर बोये जाते हैं। एक बार स्थापित हो जाने के बाद मृदा संरक्षण में यह वृक्ष महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

रासायनिक संघटन (प्रतिशत)

शुष्क पदार्थ	कच्ची प्रोटीन	कच्चा रेशा	ईथर निष्कर्ष	भस्म
25–30	9–10	10–12	2–3	5–15

देशी बबूल

प्रचलित नाम : **बबूल/उला थोर्न**
वानस्पतिक नाम : **अकेसिया निलोटिका (*Acacia nilotica*)**

देशी बबूल अकेसिया की 135 प्रजातियों में से एक है। यह शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में पाया जाने वाला एक प्रमुख पेड़ है। यह पेड़ कृषित क्षेत्रों व चारागाहों में मुख्य रूप से पाया जाता है। बबूल की टहनियों पर छोटी–छोटी पत्तियां पायी जाती है तथा लम्बे व नुकीले कांटे भी पाये जाते हैं। देशी बबूल तेजी से बढ़ने वाला पेड़ है, जो 4–5 वर्ष में तैयार होता है। देशी बबूल भारत, पाकिस्तान, अफ्रीका व आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। भारत में मुख्यतः राजस्थान, पंजाब, दिल्ली, हरियाणा, उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात व कई अन्य राज्यों में पाया जाता है। राजस्थान में यह पेड़ लगभग सभी स्थानों में पाया जाता है। बबूल 5–20 मीटर तक ऊँचा, घना, गोलाकार, मुकुट के समान तना व टहनियाँ गहरे–काले रंग की छाल युक्त होती है, जिससे कम गुणवत्ता का गोंद निकलता है। इस पेड़ की टहनियों पर नुकीले कांटे पाये जाते है। कांटे 5–75 सेमी. लम्बे होते हैं। बबूल के फूल स्वर्णिम पीले रंग के, मीठे व सुगंधित होते हैं। फलियाँ रेखीय, चपटी, 4–22 सेमी. लम्बी तथा 1–2 सेमी. चौड़ी गहरे भूरे से सलेटी रंग की होती है। प्रत्येक फलियों में 8–15 अण्डाकार, चपटे सेम के आकार के बीज पाये जाते हैं।

उपयोगिता

बबूल की पत्तियों को पशु बड़े चाव से खाते हैं। वर्ष में 2 बार छंगाई करके हरे चारे के रूप में अथवा सुखाकर पशुओं को खिलाने के काम में लिया जाता है। भेड़, बकरी व ऊँट इसकी हरी पत्तियों को कांटे होने के बावजूद आसानी से खा लेते है क्योंकि इसकी कोमल पत्तियां स्वादिष्ट तथा पौष्टिक होती है। पत्तियां खाने के बाद बची हुई लकड़ी का उपयोग किसान घर में ईंधन के रूप में तथा कांटेदार होने के कारण खेत व पशुओं के बाड़े के चारों तरफ बाड़ बनाने में करता है। पत्तियों के अलावा इस पेड़ से पातड़ियां भी प्राप्त होती है जो बहुत ही स्वादिष्ट तथा पौष्टिक होती है। जिन्हें सभी पशु चाव से खाते हैं। पातड़ियां हरी अवस्था में भी पशुओं को खिलाते हैं तथा ज्यादा होने पर ग्रामीण इकट्ठी कर के सूखा लेते हैं जो बाद में पशुओ

को खिलाने के काम मे ली जाती है। यह पेड़ मृदा सुधारने तथा तेज हवा से होने वाले मृदा अपरदन को रोकता है। तेज हवा से फसलों को गिरने से बचाने के लिये विंड ब्रेक तथा शेल्टर बेल्ट के रूप में भी इसको लगाया जाता है। रेगिस्तान के स्थिरीकरण को रोकने में देशी बबूल बहुत ही उपयोगी वृक्ष है। इसके बीजों को बरसात के मौसम में लगा देना चाहिए तथा कुछ समय तक देखभाल की जरूरत है। यह बहुत की जल्द बढ़ता है। एक बार पूर्ण बढ़वार होने के बाद देखभाल की जरूरत नहीं होती है क्योंकि इसकी जड़ें गहरी होती हैं जो मृदा से नमी ग्रहण कर लेती है।

रासायनिक संघटन (प्रतिशत)

शुष्क पदार्थ	कच्ची प्रोटीन	कच्चा रेशा	ईथर निष्कर्ष	भस्म
35—60	11—18	10—19	3.2—5.8	5—15

सुबबूल

प्रचलित नाम : **कुबबूल/चमत्कारी पेड़**

वानस्पतिक नाम : **ल्यूसैना ल्यूकोसिफेला (*Leucaena leucocephala*)**

यह लगभग सम्पूर्ण उष्ण कटिबन्धिय क्षेत्रों मे पाया जाने वाला बहुवर्षीय पेड़ है जो सम्पूर्ण एशिया पेसिफिक, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका व एशियाई देशों में फैला है। भारत में यह पेड़ अण्डमान निकोबार द्वीप समूह, आन्ध्रप्रदेश, अरूणाचल प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, दिल्ली, गोवा, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, दमन व दीव, हिमाचल प्रदेश तथा राजस्थान में प्रमुखता से मिलता है। यह पेड़ कांटों रहित अधिक बढ़ने वाला 7–18 मीटर लम्बा होता है। इसकी पत्तियाँ 6–8 के जोड़ों में पायी जाती है जिनमें 11–23 पत्रक होते हैं जो 8–16 मिमी. लम्बे होते हैं। यह पेड़ शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में जहां की मृदा खराब रहती है वहां भी आसानी से पनपता है तथा मृदा अपरदन को रोकने में मुख्य भूमिका निभाता है।

उपयोगिता

इस पेड़ को दुनिया भर में बहुत ही अच्छे व पौष्टिक तथा अन्य बहु उपयोग के कारण चमत्कारी पेड़ भी कहते है। इस पेड़ को कृषि वानिकी में मुख्य रूप से उगाया जाता है। चारे के अतिरिक्त यह पेड़ अन्य कई तरह से उपयोगी है। ईंधन के लिये लकड़ी, हरी खाद, छाया तथा मृदा कटाव नियंत्रण जैसी विस्तृत विविधता होने के कारण दुनिया भर में चमत्कारी पेड़ के रूप मे विख्यात है। सुबबूल पेड़ का सबसे पहला उपयोग इसकी उच्च पाचकता युक्त पत्तियां होती है जो पशुओं का उत्पादन बढ़ाने में बहुत ही उपयोगी सिद्ध होती है। सुबबूल की पत्तियों को हरी अवस्था में पशुओं को खिलाने के काम में लिया जाता है। इसके अलावा सूखे चारे के रूप में भी प्रचुर मात्रा में उपयोग लिया जाता है। चारे के अतिरिक्त फसल प्रणाली में विशेषकर कंटूर प्रणाली तथा कृषि वानिकी में भी सुबबूल मुख्य भूमिका निभाता है। कंटूर प्रणाली में तेज ढ़लानों में अपरदन को रोकने में यह पेड़ बहुत ही उपयोगी है। इसके अलावा सुबबूल के चारे को फसलों की पट्टियों के मध्य बिछा दिया जाता है जो एक परत के रूप में काम करती है। मृदा अपरदन रोकती है व मृदा नमी को भी बचाती है। यह पेड़ लैग्युमिनेसी कुल का होने के कारण मृदा सुधारक है। यह पेड़ वायुमण्डल में पायी जाने वाली

नाईट्रोजन को मृदा में स्थिरीकरण कर, मृदा उर्वरता को बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त सुबबूल के पेड़ विंड ब्रेक व शेल्टर बेल्ट के रूप में भी लगाये जाते हैं जो वायु अपरदन को रोकने का एक प्रभावी उपाय है तथा शीत लहर व गर्म हवाओं से फसलों को बचाता है। इस पेड़ को 3–10 मीटर की दूरी पर लगा सकते हैं एवं वर्षा ऋतु में लगाना लाभदायक रहता है क्योंकि वर्षा ऋतु में आसानी से थोड़ी देखभाल करने पर ही लग जाता है। पूर्ण विकसित पेड़ को किसी प्रकार की देखभाल करने की जरूरत नहीं होती है। एक पेड़ से वर्ष भर में 15–100 क्विंटल सूखा चारा प्रति हेक्टेयर आसानी से प्राप्त होता है।

रासायनिक संघटन (प्रतिशत)

शुष्क पदार्थ	कच्ची प्रोटीन	कच्चा रेशा	ईथर निष्कर्ष	भस्म
25–30	14–28	19–20	1.5–6.0	10–11

इजरायली बबूल

प्रचलित नाम : **अम्ब्रेला थोर्न**
वानस्पतिक नाम : **अकेसिया टोरटिलिस (*Acacia tortilis*)**

यह शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों का एक प्रमुख पेड़ है जो सड़क किनारे तथा पथरीली, कंकरीली व पर्वतीय क्षेत्रों में मुख्य रूप से पाया जाता है। इस पेड़ की एक विशेषता है कि यह शीघ्र ही बढ़ता है तथा 4 से 5 वर्ष में 5–10 मीटर तक बढ़ जाता है एवं पूर्ण विकसित हो जाता है। इसकी जड़ें कम गहरी होती है तथा लवणीय व क्षारीय मृदाओ में आसानी से उगाया जा सकती है। यह पेड़ 100 –1000 मिमी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों जहां का तापमान 20^{0}–50^{0} से. तक हो, आसानी से बढ़ता है। इसकी पत्तियाँ छोटी–छोटी व टहनियां कांटेदार होती है।

उपयोगिता

कांटेदार टहनियाँ होने के बावजूद भेड़, बकरियाँ तथा ऊँट इसे आसानी से चर लेते हैं। इस पेड़ की हरी व सूखी पत्तियों को पशु बड़े चाव से खाते हैं। हरे पत्तों को छंगाई कर पशुओं को चराया जाता है तथा सुखाकर व झाड़कर सूखे पत्ते इकठ्ठे करते हैं। इस पेड़ की छंगाई वर्ष में दो बार करते हैं। चारे के अतिरिक्त इसकी टहनियाँ ईंधन के लिये काम में ली जाती हैं। एक पेड़ से 15–20 किलोग्राम हरी पत्तियाँ प्राप्त होती हैं। इस पेड़ पर फलियाँ लगती है जिनको सभी पशु बड़े चाव से खाते हैं। ग्रीष्म ऋतु से पूर्व छंगाई नहीं करने पर इसकी पत्तियाँ स्वतः ही झड़ जाती है। जो पुनः वर्षा ऋतु में आती है। रेगिस्तान के विस्तार को रोकने के लिये यह सर्वोत्तम पेड़ है क्योंकि यह बहुत ही कम पानी में आसानी से उग जाता है तथा एक बार लगने के बाद बहुत ही जल्दी फैलाव करता है। इजरायली बबूल खेतों की बाड़ बनाने में भी बहुत उपयोगी है जो आवारा पशुओं को रोकने का प्रभावी उपाय है।

रासायनिक संघटन (प्रतिशत)

शुष्क पदार्थ	कच्ची प्रोटीन	कच्चा रेशा	ईथर निष्कर्ष	भस्म
35–55	12–14	10–13	2.2–7.3	10–12

अरडू

प्रचलित नाम : महारूख/महानिम्ब/स्वर्ग का पौधा

वानस्पतिक नाम : ऐलेन्थस एक्सलसा (*Ailanthus excelsa*)

अरडू वृक्ष भारत की उत्पत्ति का माना जाता है। भारत में मुख्य रूप से गुजरात, राजस्थान तथा हरियाणा आदि राज्यों के अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। इसकी औसत ऊँचाई 10–15 मीटर होती है। इसकी छाल हल्की सलेटी–भूरे रंग की होती है। पत्तियां 30–60 सेमी. लम्बी, युगल में पायी जाती है। इसका तना श्वेत–पित मिश्र रंग का होता है। अरडू एक जल्दी बढ़ने वाला पेड़ है जो 5–7 साल में बढ़कर तैयार हो जाता है। अरडू के पौधे लगाने के लिये नर्सरी तैयार करनी चाहिये। नर्सरी तैयार करने के लिये मिट्टी भरी हुई थैलियों में बीज लगाकर पानी देना चाहिये। बीज लगाने के लिये 200 गेज की 10X20 सेमी. की थैलियाँ पर्याप्त रहती हैं। थैलियाँ 1:1:1 लाल मृदा, बालू, गोबर की खाद से भरनी चाहिये। पेड़ों को 5X5 मीटर की दूरी पर लगाना चाहिये।

उपयोगिता

भेड़ व बकरियाँ रखने वाले किसान अरडू के पेड़ खेत में लगा कर बीच–बीच में कृषि कर सकते हैं। इसे कृषि वानिकी कहते हैं। इससे पशुओं के लिये हरी पत्तियां मिलती रहती है। अरडू की पत्तियाँ आकार में बड़ी व चौड़ी होती है तथा पशु इसकी सूखी व हरी दोनों प्रकार की पत्तियों को बड़े चाव से खाते हैं। इस पेड़ से पत्तियाँ भी अधिक मात्रा में मिलती है। गाँवों में किसान अरडू के पेड़ों की छंगाई करके इसकी पत्तियाँ भेड़, बकरी तथा ऊँट व अन्य पशुओं को खिलाते हैं। अरडू का पेड़ जल्दी बढ़वार करता है अतः साल में दो छंगाई आसानी से कर सकते हैं। यद्यपि बढ़वार तो जल्दी ही आ जाती है परन्तु ज्यादा कच्ची पत्तियाँ उतनी स्वादिष्ट नहीं रहती है तथा पशुओं को नुकसान भी कर सकती है। परिपक्व हुई पत्तियाँ पौष्टिक व स्वादिष्ट होती है तथा पशु चाव से खाते हैं। अरडू के पेड से 3–5 क्विंटल हरा चारा प्रति वर्ष आसानी से प्राप्त किया जाता है। अरडू की पत्तियाँ हरी अवस्था में पशुओं को छंगाई करके खिलाते हैं तथा इनको सुखाकर अकाल में चारे की कमी की स्थिति में दूसरे चारे के साथ मिलाकर खिला सकते हैं। अरडू की पत्तियों में प्रोटीन अधिक मात्रा में पाया जाता है। अरडू की

प्रारम्भिक अवस्था में छंगाई नहीं करनी चाहिये, पेड़ जब 4–5 वर्ष का हो जाए तब पहली छंगाई करनी चाहिये। अरडू की लकड़ी हल्की होती है जो हल्के खिलौने, प्लाई व लकड़ी के सामान बनाने में काम में ली जाती है। अरडू का वृक्षारोपण करने के लिये सर्वोत्तम समय वर्षा ऋतु है। पौधे लगाने के लिये 30X30X30 सेमी. के गड्ढे खोदकर उन में गोबर की खाद व बालू मृदा आदि मिलाकर भर देना चाहिये तथा वर्षा ऋतु में पौधे लगाने चाहिये जिससे ज्यादा देखभाल की जरूरत नहीं रहे।

रासायनिक संघटन (प्रतिशत)

शुष्क पदार्थ	कच्ची प्रोटीन	कच्चा रेशा	ईथर निष्कर्ष	भस्म
65–70	16–19	12–21	3–4	11–19

नीम

प्रचलित नाम : **नीम्ब/लिम्बा**

वानस्पतिक नाम : **एजेडीरेक्टा इंडिका (*Azadirachta indica*)**

नीम शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों का एक प्रमुख वृक्ष है। इसकी उत्पत्ति भारत, बांग्लादेश व पाकिस्तान में हुई मानते है। यह पेड़ लगभग सम्पूर्ण ऊष्ण व उपोष्ण कटिबंधिय क्षेत्रों में पाया जाता है। भारत में यह पेड़ मुख्यतः राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, हरियाणा, पंजाब, उत्तरप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र तथा उड़ीसा आदि राज्यों में पाया जाता हैं। नीम का पेड़ काफी फैलाव लिये होता है जो 100 से भी अधिक वर्षों तक जीवित रहता है। इसकी ऊँचाई 12–17 मीटर तक होती है। यह पेड़ 250 से 1000 मिमी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में भी अच्छा पनपता है। यह वृक्ष वर्ष भर हरा भरा बना रहता है। पतझड़ के मौसम में इस पेड़ के सारे पत्ते पीले पड़ जाते हैं फिर नई पत्तियां आने के बाद (अप्रेल–मई के माह में) हरे सफेद रंग के फूल लगते हैं। तत्पश्चात् फल लगते हैं जिन्हें निम्बोली कहते हैं। नीम का पेड़ सूखी पथरीली तथा हल्की मृदाओं में भी आसानी से लगाया जा सकता है। प्रारम्भिक अवस्था में यह पेड़ कुछ धीरे बढ़ता है फिर एक–डेढ़ साल बाद इस पेड़ की देखभाल की जरूरत नहीं होती है।

उपयोगिता

गाय व भैंस को छोड़कर बाकी सभी पशु जैसे भेड़, बकरी व ऊँट नीम की पत्तियों को बड़े चाव से खाते हैं। गाय व भैंस इसे खाना कम पंसद करते हैं। समान्यतः इस वृक्ष की वर्ष में दो बार छंगाई करते हैं तथा प्रति वर्ष 50–70 किलो ग्राम चारा आसानी से प्राप्त होता है। सूखा चारा प्राप्त करने के लिये पेड़ की छंगाई करके सुखाकर झाड़ लेते हैं जिनको बाद में पशुओ को खिलाने के काम में लेते है। नीम से चारे के अतिरिक्त इसके बीजों से खल भी बनाई जाती है। खल में हल्की दुर्गंध होने के कारण दुधारू पशु जैसे गाय व भैंस इसे खाना पसंद नहीं करते हैं परन्तु बकरी, भेड़ व ऊँट इसे अन्य चारे के साथ मिश्रण के रूप में खा लेते हैं। इसके अलावा नीम का उपयोग जैविक कीटनाशक के रूप में किया जाता है। सामान्यतः नीम के बीज वर्षा ऋतु में स्वतः ही उगते हैं अतः इनको वर्षा ऋतु में भी उचित जगह पर स्थानान्तरित कर देना चाहिये ताकि पौधा जल्दी विकसित हो

जाये। नीम एक बहुत उपयोगी वृक्ष है, इस कारण इसे कल्पतरू/नए युग का अवतार तथा जीवाणुनाशक पेड़ भी कहते है।

रासायनिक संघटन (प्रतिशत)

शुष्क पदार्थ	कच्ची प्रोटीन	कच्चा रेशा	ईथर निष्कर्ष	भस्म
30—35	12—18	11—23	4—5	8—15

जाल

प्रचलित नाम : पीलू

वानस्पतिक नाम : सेल्वेडोरा स्पीसीज (*Salvadora species*)

यह शुष्क व अर्द्धशुष्क रेगिस्तानी क्षेत्रों में पाया जाने वाला प्रमुख वृक्ष है जो लवणता को आसानी से सहन कर सकता है। जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ पर यह वृक्ष कम ही देखने को मिलता है। मार्च–अप्रेल में इस पेड़ पर नई पत्तियां निकलती है जो पकने पर मोटी हो जाती हैं। यह पेड़ भारत, पाकिस्तान व दक्षिणी ईरान में पाया जाता है। भारत में मुख्य रूप से राजस्थान, गुजरात व हरियाणा के शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। राजस्थान में यह पेड़ मुख्यतः पश्चिमी राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्रों जैसे बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर व जोधपुर में पाया जाता है। मुख्यतः यह पेड़ क्षारीय व बलुई मृदा में जहाँ वार्षिक वर्षा 150–350 मिमी. तक होती है, बहुतायत से पाया जाता है। सेलवेडोरा की दो मुख्य प्रजातिया पाई जाती है।

1. **मीठा जाल–सेलवेडोरा ओलिआइडिस**
2. **खारा जाल–सेलवेडोरा परसीका**

मीठे जाल को जाल तथा खारे जाल को पीलू कहते है। दोनों प्रजातियों में मुख्य अन्तर इनकी पत्तियों में होता है। मीठे जाल की पत्तियां मोटी तथा चौड़ी होती है जबकि खारे जाल की पत्तियां लम्बी व पतली होती हैं। यह दोनों ही सदाबहार पेड़ हैं जो सदैव हरे रहते हैं। इनके तने टेढ़े–मेढ़े तथा शाखायें झुकी हुई रहती हैं। इनकी पत्तियां विपरीत दिशाओं में लगी हुई रहती हैं। इस पेड़ को नमी व पानी की बहुत कम आवश्यकता होती है।

उपयोगिता

जाल रेगिस्तान का जहाज कहे जाने वाले पशु ऊँट के लिये उत्तम चारा है। यह पेड़ ग्रीष्म ऋतु में जब शुष्क क्षेत्रों में घासों की उपलब्धता बहुत कम रहती हैं तब उत्तम चारा प्रदान करता है। किसान इसकी छंगाई करके पत्तियां पशुओ को खिलाते हैं। मुख्य रूप से यह ऊँटों का बहुत ही पसंदीदा आहार है। इस पेड़ को ऊँट सीधा भी चर लेता है। परन्तु छंगाई करने से हरी पत्तियां तो पशु चर लेता है तथा लकड़ी सूखने के पश्चात ईंधन के रूप में काम में आती है। इसके एक पेड़ से औसतन 50–70 किलोग्राम हरा

चारा प्रति वर्ष प्राप्त होता है। जाल के पेड़ से पत्तियों के अतिरिक्त फल भी प्राप्त होते हैं। इस पेड़ का प्रवर्द्धन मुख्य रूप से बीज द्वारा होता है। परन्तु कलम से भी इसका वृक्षारोपण किया जा सकता है। इस पेड़ के वृक्षारोपण के लिये वर्षा ऋतु सबसे उपयुक्त समय है क्योंकि बरसात के मौसम में ज्यादा देखभाल की जरूरत नहीं पड़ती है। अगर समुचित पानी की व्यवस्था हो तो मार्च के महीने में भी वृक्षारोपण किया जा सकता है। रेगिस्तानी क्षेत्रों मुख्य रूप से बालू के रेगिस्तान में यह पेड़ मृदा अपरदन को रोकने में मुख्य भूमिका निभाता है।

रासायनिक संघटन (प्रतिशत)

शुष्क पदार्थ	कच्ची प्रोटीन	कच्चा रेशा	ईथर निष्कर्ष	भस्म
30—35	15—17	8—10	1.1—2.6	15—18

खारा जाल

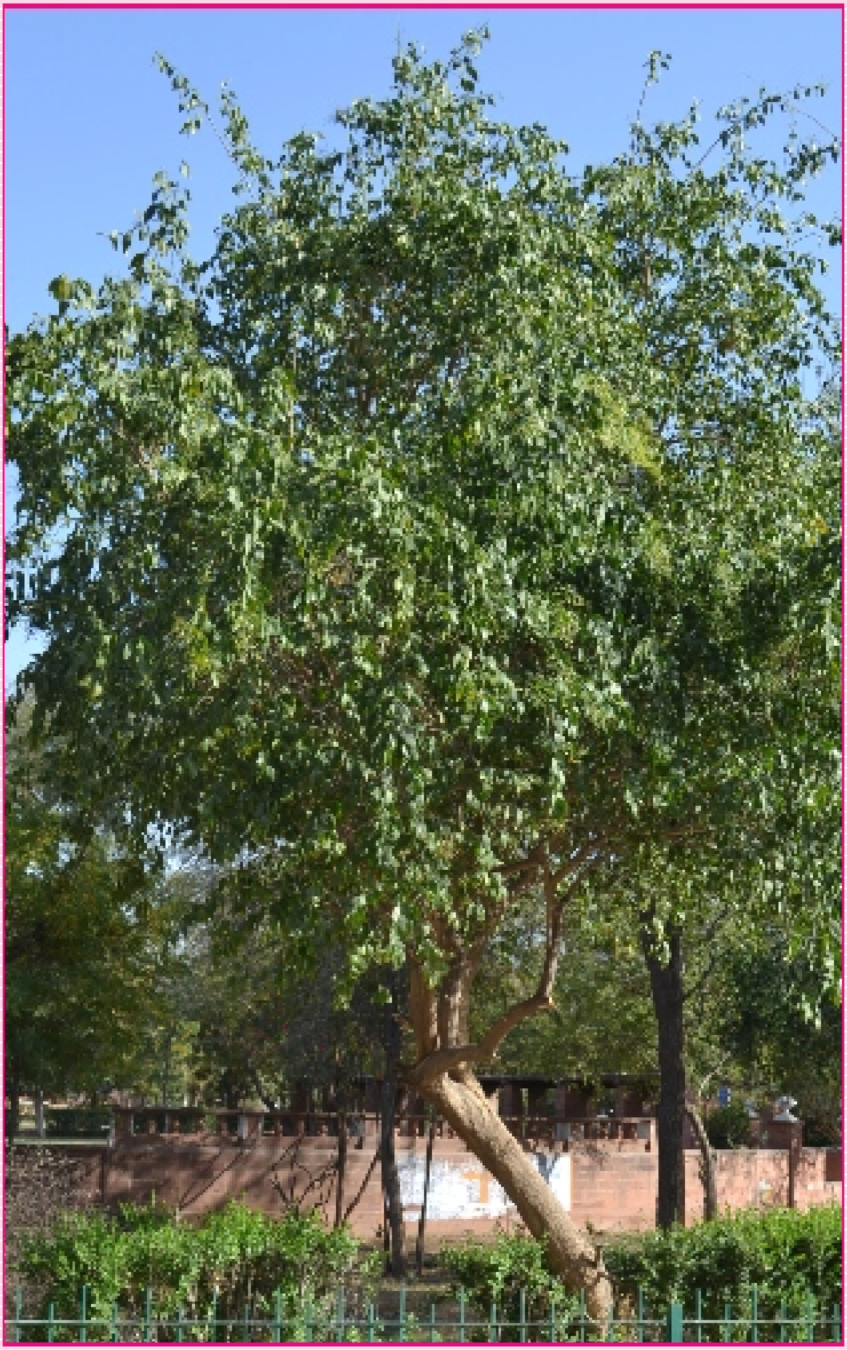

मीठा जाल

सीरस

प्रचलित नाम : **सरेस**

वानस्पतिक नाम : **अल्बिजिया लीबेक (*Albizia lebbeck*)**

सीरस भारतीय उपमहाद्वीप में अपने बहुउपयोगी गुणों के कारण बहुत ही जाना–पहचाना वृक्ष है। इस वृक्ष में उत्तम गुणवता का चारा उत्पादन करने की क्षमता है। यह पेड़ अच्छा चारा, पूरक तथा घास की गुणवत्ता सुधार कर इस समस्या से बचाता है। यह मध्यम से बड़ा वृक्ष है जो 20 मीटर तक लम्बा होता है। यह वृक्ष फैलने की प्रवृत्ति का होता है। इसमें कई तने निकल आते हैं। पत्तियां 08–10 सेमी. लम्बी तथा 3–11 के जोड़ो में होती हैं। सीरस भारत की उत्पत्ति का है जो दक्षिणी–पूर्वी एशिया तथा आस्ट्रेलिया के मानसूनी क्षेत्रों में फैला हुआ है। यह वृक्ष मुख्यत: शुष्क व उष्ण प्रदेशों में पाया जाता है जहां वर्षा 400–2000 मिमी. तक होती है। यह वृक्ष कई तरह की मृदाओं में पाया जाता है। लवणीय व क्षारीय मृदाओं में आसानी से उगता है परन्तु जल भराव नहीं होना चाहिए।

उपयोगिता

यह पेड़ पशुओं के लिये बहुत ही स्वादिष्ट तथा पौष्टिक चारा प्रदान करता है। सीरस की पत्तियां हरे चारे के रूप में छंगाई करके खिलाई जाती है। सीरस की हरी पत्तियों को ऊँट, भेड़ व बकरियाँ बड़े चाव से खाते हैं। सूखी पत्तियों को अन्य सूखे चारे के साथ मिलाकर खिलाने के काम में ले सकते हैं। सीरस पेड़ चारा उपलब्ध कराने के अतिरिक्त चारागाह विकसित करने में भी सहयोगी है। इसके अतिरिक्त यह पेड़ मृदा उर्वरता भी बढ़ाता है जिससे यह अन्य चारे की उपज बढ़ाने में भी सहयोगी है। इसके अलावा मृदा संरक्षण में भी उपयोगी है। एक वृक्ष से 60–70 किलोग्राम सूखा चारा प्रति वर्ष आसानी से प्राप्त हो जाता है। चारे के अलावा 30–40 किलोग्राम प्रति वृक्ष प्रति वर्ष फलियाँ पैदा होती हैं, जो बहुत ही पौष्टिक होती हैं।

रासायनिक संघटन (प्रतिशत)

शुष्क पदार्थ	कच्ची प्रोटीन	कच्चा रेशा	ईथर निष्कर्ष	भस्म
40–50	16–23	30–32	3–4	7–8

-: तकनीकी मार्गदर्शन हेतु आभार :-

प्रो. (डॉ.) कर्नल ए. के. गहलोत
कुलपति
राजस्थान पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर

प्रो. बी. के. बेनीवाल
अधिष्ठाता
पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, बीकानेर

डॉ. त्रिभुवन शर्मा
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
पशु पोषण विभाग, पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, बीकानेर

-: प्रकाशक :-

डॉ. राजेश कुमार धूड़िया
प्रोफेसर एवं प्रमुख अन्वेषक
पशुधन चारा संसाधन प्रबन्धन एवं तकनीक केन्द्र
राजस्थान पशुचिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, बीकानेर
मोबाइल- 09414283388; Email: lfrmtc.rajuvas@gmail.com; dhuriark12@yahoo.co.in

मुद्रक : डायमंड प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनरी, बीकानेर # 9784105819